

समाचार मूल्य

डॉ. मीना शर्मा,

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य),
दिल्ली विश्वविद्यालय

जमाना बदल गया है। मीडिया बदल गयी है। और मूल्य !!! मूल्य का क्या है? मूल्य किस चिड़िया का नाम है! इस चिड़िया का नाम आप यदि आज के बड़े-बड़े पत्रकार और संपादक के सामने लेंगे और इस चिड़िया का अता-पता पूछेंगे तो वो एक बार आपको ऊपर से नीचे भौंह चढ़ाकर विस्मय भरी नजर से देखेंगे और मन-ही-मन कहेंगे, ऊल्लू है क्या, कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहा हैं, लगता है पगला गया है, 'क्या बकवास है' वगैरह-वगैरह। तो क्या सचमुच जमाना बदल गया है, जिसमें मूल्य का नाम लेते ही उसे पागलपन मान लिया जाता हो, तो आप सोचेंगे कि क्या यह वाकई बेमानी वाला प्रश्न है जो सबको हैरानी में डाल देता है। तब ऐसी स्थिति में आज की मीडिया के वर्तमान परिदृश्य के बारे में सहज परिकल्पना की जा सकती है।

बदले-बदले से अन्दाज नजर आते हैं, बदले-बदले से सरकार नजर आते हैं, कभी था वो एक जमाने में जन-सरोकार अब तो समाचार के कारोबार नजर आते हैं। अब तो जनता का अखबार बाजार का अखबार बनकर रह गया है। आज की मीडिया कार्पोरेट मीडिया है। मीडिया के इस कार्पोरेट कल्चर ने उसे बाजार कल्चर ने पत्रकारिता के स्वरूप, पत्रकारिता के तौर-तरीके, पत्रकारिता के सिद्धांत और पत्रकारिता के मूल्य सब कुछ बदल कर रख दिया है। पत्रकारिता के चरित्र को बदलकर रख दिया है।

आज की मीडिया, पूंजी, बाजार और सत्ता का पिछलग्गू बनकर रह गया है। इस कार्पोरेट

मीडिया में एक टी.वी. चैनल या एक अखबार 150-200 करोड़ का माल लगता है, निवेश होता है और इस भारी निवेश की वसूली करोड़ों के विज्ञापन, खबरों की खरीद-फरोख्त कर की जाती है या दूसरे शब्दों में कहे तो यह खबरों के प्रबंधन का दौर है, न्यूज ट्रेडर का दौर है। खबरों के सौदागर अब खबरों का सौदा करते हैं सत्ता के साथ अपना नेक्सस बनाने के जुगाड़ में भिड़े रहते हैं। सत्ता की मीडिया के दौर में हाशिये के लोगों की आवाज आम दम तोड़ कर रह जाती है।

एक समय अखबारों का नारा था 'सबकी खबर ले सबकी खबर दें' उस खबर के दायरे में सब थे। लेकिन आज उस 'सब' की पड़ताल करने पर आइए देखते हैं कि उस 'सब' में कौन-कौन शामिल है और कौन-कौन बाहर है। क्या उसमें स्त्री, बच्चे और वृद्ध शामिल है? क्या उसमें दलित शामिल है? क्या उसमें आदिवासी शामिल है? क्या उसमें मुस्लिम शामिल है? क्या उसमें गांव-देहात शामिल है? क्या उसमें उत्तर पूर्व शामिल है? क्या उसमें हाशिए के लोग शामिल हैं? क्या उसमें आम जनता-जनार्दन की आवाज शामिल है? हम पाएंगे कि इतनी बड़ी आबादी, इतना बड़ा वर्ग दूसरे शब्दों में कहें तो मास ही गायब है और बिना मास के मास मीडिया कैसा? आज सोशल मीडिया पर जो इतने बड़े पैमाने पर आम लोगों के द्वारा अभिव्यक्ति के नये प्लेटफार्म पर जाकर व्यापक एवं मास अभिव्यक्ति करना, इसी अंतराल के असंतोष का प्रगटीकरण है अथवा विस्फोट है। एक वैकल्पिक माध्यम को

पाकर मास की संचित अनुभूति का सैलाव ही प्रकारान्तर से सोशल मीडिया पर बह निकला है। वह कितना सही और कितना गलत है, वो एक अलग मुद्दा है

आज की मीडिया के समक्ष जो चुनौतियाँ और संकट है उसका कारण उसका जिम्मेदार बाहर की शक्तियाँ न होकर मीडिया के अपने भीतर की कमजोरियाँ है। अखबार की चुनौतियाँ बाहर से नहीं वरन् अपने अंदर से ही है। अंदर ही अंदर समाचार में से विचार को खत्म कर दिया गया, मुद्दों का निर्वासन कर दिया गया, जनता की आवाज की अनसुनी कर दी गयी, वंचितों के साथ वंचना की गई, ईमानदार पत्रकारिता के रास्ते को भूला दिया गया, गांव, देहात, खेत-खलिहान की सुध लेनी छोड़ दी, लोकतंत्र का चौथा प्रहरी न बनकर, प्रतिपक्ष की भूमिका छोड़ दी। समाचार मूल्य के रक्षार्थ सत्यता, निष्पक्षता, विश्वसनीयता, संतुलन, जन-सरोकार, समग्रता, सामाजिक-राष्ट्रीय दायित्व बोध, लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा, न्याय के पक्ष में खड़े होने की बुनियादी पहचान और ईमानदारी का दामन छोड़ दिया है। वंचितों की, पीड़ितों की, शोषितों की आवाज एवं चीखें हमें सुनाई नहीं पड़ती है। जन-सामान्य की धड़कन नहीं सुनाई पड़ती है। आखिर हो क्या गया है इस मीडिया को? बाजार मीडिया का संग पाकर वह बीमारू मीडिया हो गया है। 'मिशन', 'प्रोफेशन' से कहीं दूर निकलकर वह एक धंधा बन गया है। आपको सर्वत्र विज्ञापन दिखेगा विचार नहीं। पहले समाचारों के बीच-बीच में विज्ञापन दिखता है और अब विज्ञापनों के बीच-बीच में समाचार ढूँढकर दिखता है। पहले टीवी पर न्यूज के बीच में ब्रेक होता था अब ब्रेक के बीच में न्यूज आता है। और न्यूज भी कैसी उसकी भी बानगी देखिए। पहले आप न्यूज देखते थे अब न्यूज के साथ 'व्यूज' देखते हैं। जो न्यूज पर चस्पाया जाता है चैनल्स और अखबारों के अपने निहितार्थ (वेस्टेड इंटेरेस्ट) और जिसमें

विचारधारात्मक जुड़ाव शामिल होता है। जिसमें चैनलों और अखबारों के आर्थिक हित और राजनीतिक हित जुड़े होते हैं। पत्रकार संपादक की खुशामद में लगा रहता है तो संपादक मालिकों के लिए न्यूज ब्रोकर का काम करता है। उसका काम होता है अपने पूंजीपति मालिक के लिए राज्यसभा का टिकट दिलवाने की जुगाड़ भिड़ाना, लॉबिंग करना और खबरों की सौदेबाजी करना। ऐसी स्थिति में ईमानदार पत्रकारिता रही कहाँ? बाजार, पैसा, राजनीति के खेल में पत्रकारिता भी शामिल हो गयी है, जो इनकी शर्तों पर चलती है, इनके इशारे पर नाचती है और अखबार महज एक उत्पाद बनकर रह गया है। जो जनता को उपभोक्ता मानकर खबर परोस रहा है।

आज अखबार और टी.वी. से सामान्य लोग और उनकी समस्या बाहर हो गयी है। जनता की आकांक्षा जनता के सपनों को पत्रकारिता के कार्पोरेट कल्चर ने किनारे लगा दिया है। ताकि बड़ी समस्या की बड़ी तस्वीर पेश न हो सके। इसके लिए अखबारों के अंदर 400 शब्दों की सीमा रख दी गई है। क्योंकि बड़ी खबर का सीधा मतलब होता है बड़ी समस्या को पेश करना और बड़ी समस्याएं पैदा कर लेना जो वो हरगिज नहीं चाहते हैं। इसके स्थान पर जन आकांक्षा को डाइवर्ट, दिग्भ्रमित करते हुए खबरें प्लांट की जाती है। जनता क्या चाहती है, जनता की क्या समस्या है, जनता क्या सोचती है, इससे उन्हें कोई सरोकार नहीं है बल्कि जनता की सोच को स्थगित करने के लिए मादक विज्ञापन का मायाजाल फेंका जाता है। खबरों को 'ऑल इज वेल' की शक्ल में पेश किया जाता है। जैसे सब कुछ चकाचक हो।

आज समाचार के अंदर से विचार ही गायब हो गया है। विचार शून्य और चिन्तन शून्य पत्रकारिता एक विचार शून्य समाज के निर्माण की दिशा में लगी हुई है। मुद्दाविहीन पत्रकारिता

दिशाहीन पत्रकारिता का पर्याय बन गया है। मीडिया ट्रायल करने वाले लोग खुद को कठघरे में रखना कब सीखेंगे? इसके बचाव में यह तर्क दिया जा सकता है कि जब समाज, देश और जीवन के सभी क्षेत्रों में मूल्यों का क्षरण हो रहा है, तो पत्रकार इससे अछूता कैसे रहे! बल्कि यह कि जब राम नाम की लूट मची हुई है तब पत्रकार इसमें पीछे क्यों रहे? राजनीति से लेकर शिक्षा, चिकित्सा, खनन, वकालत, प्रशासन, न्याय आदि के क्षेत्र में नोट बटोरने का जुनून सवार है तो अकेले पत्रकार से ही त्यागी-तपस्वी, साधु-संत बनने की अपेक्षा क्यों? किन्तु क्या दूसरों के पाप गिनाने से अपने पाप कम हो जाते हैं क्या? वह (+) और माइनस (-) बनाकर इक्वल टू (=) के सिद्धांत का रोग आज भारतीय राजनीति से लेकर पत्रकारिता तब सबको लग गया है। कांग्रेस सुषमा स्वराज पर ललितगेट प्रकरणों में आरोप लगाती है तो सुषमा स्वराज बचाव में क्वात्रोची का नाम लेकर, उसके बहाने से कांग्रेस पर आरोप लगाकर अपने दाग छुड़ाने और अपना दामन पाक करने की कोशिश इसी प्लस (+) और माइनस (-) इक्वल टू (=) के सिद्धांत के सहारे करती है। यह सिद्धांत और यह तर्क मीडिया और राजनीति दोनों के लिए कवच-कुंडल का कार्य करती है। किन्तु कवच-कुंडल जब महाभारत के कर्ण के काम न आया तो हम इस सिद्धांत को कब तक ढोएंगे! तो क्या इस तर्क के आगे की सब कर रहे हैं तो हम भी करेंगे, सबको समर्पण कर देना चाहिए। इस हमाम में सब नंगे हैं तो हम भी होंगे। तो क्या पत्रकारिता महज धंधा है? तो फिर लोकतंत्र की चौथी आँख का क्या होगा? लोकतंत्र का चौथा प्रहरी भी लूट में शामिल हो जाए, लूटने लग जाए तो लोकतंत्र और देश का क्या होगा? देश का तो चौथा हो जाएगा! विशेषकर तब जब और आस्था लोकतंत्र के चौथे प्रहरी होने के कारण ही करोड़ों लोगों ने बड़ी आस और आस्था से मीडिया को सिर पर बैठाया हो, उसे अपनी

आंख का तारा बनाया हो, ताकि उनके सपने मीडिया में दिखे। उनके अरमान मीडिया के द्वारा पूरा हो सके। यह सपना आज भी उनकी आंखों में जिन्दा है।

लोगों के सपने तो आज भी जिन्दा है लेकिन मीडिया भी जिन्दा है, उसका अमूक प्रमाण है यह प्रश्न मीडिया के मानस को कितना मथता है, कितना सालता है, इसका उत्तर तो मीडिया-बिरादरी को अपने भीतर से ही खोजकर देना होगा। कहीं ऐसा न हो कि लिखने वाली स्याही से पत्रकारिता के मुँह पर कालिख लग जाए। 'दाग अच्छे हैं' सिद्धांत पर अपना दामन भी दागदार करने की होड़ और दौड़ हमें कहां ले जाकर छोड़ेगी, वह आत्ममंथन का प्रश्न है। समाचार और पत्रकारिता के मूल्य के संदर्भ में वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप नैय्यर की प्रासंगिक टिप्पणी का यहां सहज स्मरण हो रहा है –

“हमारा वह समय अभी पूरी तरह विस्मृत नहीं हुआ है जब पत्रकार सचमुच ईमानदारी से काम करते थे। तब पैसे की इतनी चकाचौंध नहीं थी। उन दिनों पाठकों ने कभी यह शिकवा नहीं किया कि हम पत्रकारों ने उनके विश्वास को तोड़ा है। आज मुझे लगता है हमारे देश में प्रतिबद्धता की कमी है। मूल्यों के प्रति दृढ़ता नहीं रही आदर्शवादिता और राष्ट्रीय सामाजिक दायित्व बोध का असर नहीं रहा। कई अखबारों के संपादक अब मालिकों के पी.आर.ओ. बन गये हैं। अब ऐसी स्थिति में संपादक और पत्रकार दोनों देखते हैं जब हम दूसरों के लिए पी.आर.ओ.शिप का काम करते हैं, तो अपने लिए क्यों न करें। और फिर वे भी पैसा कमाने लग जाते हैं। यानी जो वातावरण है वह अच्छी और स्वस्थ पत्रकारिता के प्रतिकूल है। लेकिन सोचिए, क्या हम भी इस रंग में रंग जाएं? यदि हम भी इस बहाव में बह गए, तो देश का क्या होगा?”

‘देश का क्या होगा’ से ही जुड़ा भविष्य है कि समाचार का क्या होगा, पत्रकार का क्या होगा?

पत्रकारिता का क्या होगा? क्योंकि देश है तो सब है। इसलिए इस बिन्दु पर थोड़ा ब्रेक लेकर (अल्प विराम) सोचते हैं कि देश और अपने बच्चे-खुचे सम्मान की रक्षा के खातिर इस दिशा में सोचे। मूल्य और सम्मान की रक्षा के लिए विचार करें। और साथ ही अपने विचार की भी रक्षा करें। क्योंकि धीरे-धीरे विचारने की आदत छोड़ते-छोड़ते हम धीरे-धीरे विचारने की शक्ति भी खोते जा रहे हैं। क्योंकि विचार है तो हम हैं, हम जीवित हैं। समाचार है, समाचार जीवित है। मूल्य है मूल्य जीवित है और हम जीवित है। हर जीवित चीज को अपना प्रमाण खुद ही देना पड़ता है।

संदर्भ

1. डॉ. अरुण जैन, पत्रकारिता और पत्रकारिता, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2003.
2. डॉ. विनोद गोदरे, वाणी प्रकाशन, सं. 2000, हिन्दी पत्रकारिता : स्वरूप एवं सन्दर्भ
3. डॉ. हरीश अरोड़ा, जनसंचार, युवा साहित्य चेतना मण्डल, नई दिल्ली
4. डॉ. हरीश अरोड़ा, प्रिंट मीडिया लेखन, के.के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
5. डॉ. हरीश अरोड़ा, ग्लोबल मीडिया और हिन्दी पत्रकारिता, साहित्य संचय, नई दिल्ली

Copyright © 2016, Dr. Meena Sharma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.